

---

# इकाई 1 कथा और आख्यान के विभिन्न रूप

---

## इकाई की रूपरेखा

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 'कथा' और 'आख्यान' का अर्थ, परस्पर सम्बन्ध और विविध रूप
  - 1.2.1 'कथा' और 'आख्यान' का अर्थ
  - 1.2.2 'कथा' का मूल स्वरूप
  - 1.2.3 'कथा' की प्राचीनता
  - 1.2.4 'कथा' का मूल उद्देश्य
- 1.3 कथा का मौखिक रूप—लिखित परम्परा का आरम्भ
  - 1.3.1 महाभारत
  - 1.3.2 'बडकहा' ('बृहदकथा')
- 1.4 "आख्यान" की प्राचीन अवधारणा और उसके विभिन्न रूप
- 1.5 "कथा" की नयी अवधारणा
  - 1.5.1 सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता'
  - 1.5.2 कादम्बरी
  - 1.5.3 हर्षचरित
  - 1.5.4 दशकुमारचरित
  - 1.5.5 कथा-रचना की भारतीय परम्परा का अवसान
- 1.6 सारांश  
अभ्यास

---

## 1.0 उद्देश्य

---

एम. ए. हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित माड्यूल के पाठ्यक्रम 'कहानी : स्वरूप और विकास' से सम्बन्धित खंड-1 की यह पहली इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'कथा' और 'आख्यान' के विभिन्न रूपों तथा उनके परस्पर सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- 'कथा' के मूल अर्थ और स्वरूप की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- 'कथा' की प्राचीनता से अवगत हो सकेंगे/सकेंगी।
- 'कथा' के मौखिक और लिखित रूपों के विकास से परिचय प्राप्त कर सकेंगी/सकेंगे।

- 'कथा' की प्राचीन अवधारणा और उसके विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगी/सकेंगे।
- 'कथा' की नयी अवधारणा से परिचित हो सकेंगी/सकेंगे।

---

## 1.1 प्रस्तावना

---

प्रस्तुत इकाई से हम इस पाठ्यक्रम की शुरुआत करने जा रहे हैं। 'कहानी' के स्वरूप को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए उसके मूल रूप 'कथा' से परिचित होना आवश्यक है। इसी बात को ध्यान में रख कर यह इकाई लिखी गयी है। इकाई के दूसरे भाग और अनुभागों में 'कथा' और 'आख्यान' के सम्बन्ध का निरूपण किया गया है। पहले व्युत्पत्ति की दृष्टि से दोनों के मूल स्वरूप का संकेत किया गया है। तत्पश्चात् कथा के मूल स्वरूप का विवेचन किया गया है। तदनन्तर सातवीं सदी में 'कथा' और 'आख्यायिका' के अर्थ-निरूपण में आए परिवर्तन पर विचार किया गया है। इकाई के अन्त में पूरे विवेचन का सारांश दिया गया है और अन्त में अभ्यास हेतु प्रश्न दिये गये हैं।

---

## 1.2 'कथा' और 'आख्यान' का अर्थ, परस्पर सम्बन्ध और विविध रूप

---

### 1.2.1 'कथा' और 'आख्यान' का अर्थ

आइए, पहले हम 'कथा' और 'आख्यान' के अर्थ और उनके सम्बन्ध पर विचार करें। अर्थ की दृष्टि से ये पर्यायवाची शब्द हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'कथा' संस्कृत की 'कथ्' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'कथन' या 'वर्णन' करना होता है। 'आख्या' के मूल में 'ख्या' धातु है, जिसका अर्थ भी 'विवरण', 'व्याख्या' 'कहना' या 'वर्णन करना' ही होता है। यह 'अति प्रसिद्ध' अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

### 1.2.2 'कथा' का मूल स्वरूप

'कथा' की मूल प्रकृति और पहचान को भी सुनिश्चित करना आवश्यक है। यदि हम बचपन में सुनी कथाओं पर ध्यान दें तो उनमें तीन बातें प्रमुख होती हैं। इन्हें हम 'तत्त्व' की संज्ञा दे सकते हैं। ये तत्त्व हैं 'घटनाएँ', उनका 'समयानुक्रम' और 'दिक्' में आबद्ध होना तथा निरन्तर औत्सुक्य का सृजन। 'घटना' को भी परिभाषित करना आवश्यक है। जो 'घटित' होता है वह 'घटना' है। 'घट' से 'घटित' शब्द बना है, जिसमें निर्मिति का भी भाव है। 'घटना' में आकस्मिकता, संयोग और अप्रत्याशित होने के तत्त्व होते हैं। उदाहरण के लिए भूकम्प, वायु-दुर्घटना या दो देशों के बीच युद्ध छिड़ जाना। घटनाएँ सुखद भी हो सकती हैं ; जैसे किसी का खोया पुत्र अचानक मिल जाना, किसी दरिद्र के नाम लॉटरी निकल आना, वायुयान-दुर्घटना में किसी का बच जाना या किसी देश का लम्बी गुलामी के बाद स्वतन्त्र हो जाना, आदि। कथा में नियोजित घटनाओं का कुतूहलवर्धक होना भी कथा के लिए जरूरी है। अन्यथा श्रोता में कथा सुनने की रुचि ही नहीं रह पाएगी। मनुष्य के जीवन में 'घटनाएँ' भी घटती हैं, पर वे विरल होती हैं, कभी कभी घटती हैं। जीवन में प्रमुखता 'कार्यव्यापारों' की होती है, 'घटनाओं' की नहीं। सारा जीवन, सुबह से शाम तक, आदमी कर्म-व्यस्त रहता है। 'कार्य-व्यापार' सुपरिचित, प्रत्याशित, सहज और जीने-मरने के लिए जरूरी होता है। कर्म-व्यस्तता ही जिन्दगी है। घटनाएँ तो समुद्र-यात्रा में आ जानेवाले तूफान की तरह हैं।

पर 'कथा' में 'घटनाओं' की ही प्रमुखता होती है, जीवन के सामान्य कार्य-व्यापार गौण होते हैं। कथा में सामान्य व्यापार नहीं होते, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर श्रोता के लिए वे कोई महत्त्व नहीं रखते। वे केवल 'घटनाओं' को जोड़ने का काम करते हैं। श्रोता उन्हें सुनते हुए भी प्रतीक्षा 'घटनाओं' की ही करता रहता है। ये घटनाएँ समय के अनुक्रम में गुँथी होती हैं। समय का एक ऐतिहासिक क्रम होता है जो घड़ी की टिकटिक या कैलेंडर के पृष्ठों द्वारा निर्धारित होता है। यह समय-क्रम आदमी के जन्म लेने से मृत्यु की दिशा में चलता है, या विभिन्न संवत् गणनाओं में एक से अनन्त की ओर अग्रसर होता है। इस काल-गणना में पृथ्वी अपनी धुरी या अपनी सौर-परिधि पर एक बार चक्कर लगा लेती है, जिसे हम चौबीस घंटे या वर्ष के रूप में जानते हैं। घंटा को पुनः मिनटों और सेकेंडों में विभाजित किया जाता है। वर्षों की गणना भी 'दशक', 'शताब्दी', 'सहस्राब्दी' आदि रूपों में की जाती है। इसी 'ऐतिहासिक' या प्राकृतिक कालक्रम में गुँथी घटनाओं का नाम 'कथा' है।

'काल' की तरह 'दिक्' या 'स्पेस' भी कथा के लिए जरूरी होता है। घटनाएँ 'दिक्' में ही घटित हो सकती हैं। पर 'कथा' का 'दिक्' मानव अनुभव की सीमाओं को स्वीकार नहीं करता। बच्चों की कथाओं में हमारी पृथ्वी के जाने पहचाने स्थान ही नहीं, अनजानी जगहें भी, यहाँ तक कि ब्रह्मांड के कल्पित लोक भी, घटना-स्थल के रूप में आती हैं। पर उनकी कोई पहचान नहीं होती। वे प्रायः मनुष्य के अनुभव जगत् के परे की जगहें होती हैं, शुद्ध रूप से कल्पनाप्रसूत। श्रोता की उनके बारे में कोई जिज्ञासा भी नहीं होती। 'कथा' में दिक् की अनिवार्यता होते हुए भी श्रोता के लिए उसका महत्त्व अधिक नहीं होता।

'कथा' के लिए जरूरी है कि 'घटनाएँ' कौतूहल पैदा करने वाली हों। उनमें आकस्मिक और अप्रत्याशित होने के साथ साथ नवीनता भी अपेक्षित होती है। कौतूहल बनाए रखने के लिए यह जरूरी है। यदि एक ही घटना बार बार दोहरायी जाए तो 'कथा' नहीं बनेगी। उनका सतत 'नया' होते रहना जरूरी है। कथा में कहने और सुननेवाले की एक साथ उपस्थिति भी आवश्यक है। इसीलिए 'कथा' की एक पहचान उसका 'मौखिक' होना भी है। जरूरी है कि श्रोता की आँखों में 'फिर क्या हुआ?' का भाव बना रहे और यदि श्रावयिता (सुनाने वाला) किसी कारण चुप हो जाए तो श्रोता उसे टोक दे, 'फिर क्या हुआ' का अनुरोध कर बैठे। यदि घटना स्वयं में आश्चर्यचकित और बाद की घटना के प्रति कुतूहल पैदा करनेवाली नहीं है तो 'कथा' भी बेकार है। घटनाओं की श्रृंखला में कोई भी कड़ी सुपरिचित और सामान्य घटना के रूप में नहीं हो सकती, क्योंकि वहाँ कथा अरोचक हो जाएगी। जब घटनाएँ समाप्त हो जाती हैं तो 'कथा' भी समाप्त हो जाती है।

### 1.2.3 'कथा' की प्राचीनता

मौखिक रूप में 'कथा' कितनी प्राचीन है, इसका कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है। यह अत्यन्त प्राचीन है। इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि आज भी यह मनुष्य की सहज और जन्मजात प्रवृत्ति से जुड़ी हुई है। कदाचित् मनुष्य के जन्म के साथ ही कथा का भी जन्म हो गया था। नृतत्वशास्त्रियों ने आदिम मानवों की प्राप्त खोपड़ियों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला है कि पुरापाषाण युग का मनुष्य कथा कहने-सुनने लगा था। सम्भवतः दिन भर शिकार करने के बाद रात को जब वे विश्राम के निमित्त हिंस्र पशुओं से बचाव के लिए चारों तरफ आग का जलता हुआ घेरा बना कर समूह में बैठते होंगे तो उनके दिन भर के शिकार के अनुभवों के रूप में कथा का जन्म हुआ होगा। शनैः

शनैः उसमें कल्पना भी मिश्रित होने लगी होगी और कभी ऐसा भी समय आया होगा जब शिशुओं का मनोरंजन करने के लिए वास्तविक अनुभव की कोई आवश्यकता ही न रह गयी होगी। कोई बूढ़ा आदिमानव बिना शिकार में गए अपने पूर्व अनुभवों और कल्पना की सहायता से नयी नयी कथा गढ़ लेने में महारत हो जाता रहा हो और इस प्रकार 'कथा' कहने की कला का विकास हो गया हो। यद्यपि है यह अनुमान ही, पर कथा का जन्म जरूर ही कुछ ऐसी ही परिस्थितियों में हुआ होगा।

### 1.2.4 'कथा' का मूल उद्देश्य

अनुमानतः कथा पहले मनोरंजन का ही काम करती होगी। पर धीरे धीरे उसका उपयोग उपदेश देने या 'मूल्यां' की अभिव्यक्ति के लिए किया जाने लगा होगा। वैदिक काल से ही कथा का उपयोग इस काम के लिए होता रहा है। कथा को उपदेश का माध्यम बनाने का एक बढ़िया उदाहरण पं. विष्णु शर्मा द्वारा रचित 'पंचतन्त्र' है, जिसकी रचना पहली शताब्दी ईसवी के आसपास हुई थी। पंचतन्त्र की रचना एक राजा के 'जड़ बुद्धि', 'अविनीत, उच्छृंखल और मूर्ख' राजकुमारों को 'राजनीति और व्यवहार-नीति' की शिक्षा देने के लिए हुई थी। यह भी कथाओं का संकलन ही है। यह पाँच प्रकरणों में विभक्त है। प्रत्येक प्रकरण में परस्परगुम्फित अनेक कहानियाँ हैं, जो एक ही विषय का प्रतिपादन करती हैं। इसकी एक विशेषता यह है कि यह पशु-पक्षियों की कथा है। इस कथा के पशु-पक्षी मनुष्य की तरह आचरण करते हैं और भाषा भी मनुष्य की ही बोलते हैं। बाल-मन इसमें कोई असंगति नहीं देखता, क्योंकि वह 'कथा' में यह नहीं पूछता कि 'ऐसा कैसे हुआ?' ; बल्कि यह पूछता है कि 'फिर क्या हुआ?' अविश्वास बाल-मन में नहीं होता। शुद्ध कथा-श्रोता की भी यही विशेषता होती है। 'कार्य-कारण' सम्बन्ध की दृष्टि से पंचतन्त्र की कथाओं में असंगतियाँ भरी हुई हैं। कुतूहल का तत्त्व ही कथा को आगे बढ़ाता है। पर उसकी प्रत्येक कथा किसी न किसी प्रयोजन से निर्मित है। उसमें कथा गौण है, प्रयोजन ही प्रधान है। यह भी कथा के विकास का एक चरण है, जो वर्णन की सर्जनात्मकता के समानान्तर अग्रसर हुआ है। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पंचतन्त्र में भाषिक सर्जनात्मकता पैदा करने की कोई कोशिश नहीं दिखाई पड़ती। कारण यह है कि यह केवल बच्चों के लिए निर्मित है, जिनकी भाषिक सर्जनात्मकता में कोई रुचि नहीं होती। 'पंचतन्त्र' से पहले संकलित जातक कथाओं में कथा सुनाने वाले स्वयं भगवान बुद्ध हैं और श्रोता भिक्षु-गण। ये सारी कथाएँ अलग अलग हैं। पंचतन्त्र की कथाओं के मुख्य कथक विष्णुशर्मा और श्रोता राजकुमार हैं। घटनाएँ इतनी रोचक हैं कि राजकुमार आगे की कथा सुनने के अपने कुतूहल को रोक नहीं पाते। केन्द्रीय कथा किसी पशु या पक्षी समुदाय की होती है, जिसके पात्रों को कथक बना कर परत-दर-परत अन्य कथाएँ सुनायी जाती हैं। उपदेशों में बालकों की रुचि बिलकुल नहीं है और विष्णु शर्मा इसे अच्छी तरह जानते हैं। वे पशु-पक्षियों से सम्बद्ध कथाओं को कुतूहल से भर देने की कला में माहिर हैं। पर इसके साथ ही वे उनमें 'शिक्षा' के तत्त्व भर देने की कला में भी निष्णात हैं। छह महीने बीतते बीतते कथा तो समाप्त हो जाती है, पर राजनीति के उपदेश राजकुमारों के मन पर अंकित हो जाते हैं। 'कथाकार' को 'कथा' की उपयोगिता का पता चल जाता है। कथा के परवर्ती विकास में 'कथाकार' के इस ज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

---

### 1.3 कथा का मौखिक रूप—लिखित परम्परा का आरम्भ

---

कथा की लिखित परम्परा का आरम्भ कब हुआ इसका कोई निश्चित और प्रामाणिक

विवरण उपलब्ध नहीं है। वेद, उपनिषद् और पुराण स्मृति-परम्परा में आते हैं, अतः उनमें आयी कथाएँ भी कहने-सुनने की परम्परा में ही आएँगी। वाल्मीकि रचित 'रामायण' भी कदाचित् इसी परम्परा में आएगी, क्योंकि लवकुश द्वारा उसे राजा राम के दरबार में सुनाये जाने का ही उल्लेख मिलता है। सम्भवतः 'महाभारत' पहली लिखित कथा या आख्यान है।

### 1.3.1 महाभारत

'महाभारत' का रचना-काल ई.पू. सन् 800-100 माना जाता है। इसका पहला पाठ 'जय' ई.पू. 800 में, दूसरा पाठ 'भारत' ई.पू. 500 में और तीसरा पाठ 'महाभारत' ई.पू. 200-100 में रचा गया था। लोमहर्षण-पुत्र उग्रश्रवा सौति पुराणों के विद्वान और कथावाचक थे। उग्रश्रवा ने नैमिषारण्य में कुलपति महर्षि शौनक के बारह वर्षों तक जारी यज्ञ-सत्र में उपस्थित ब्रह्मर्षियों को यह कथा सुनायी थी। उन्होंने स्वयं यह कथा महर्षि वैशम्पायन से सुनी थी। जनमेजय के सर्प यज्ञ में वैशम्पायन ने श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा निर्मित महाभारत की कथा सुनायी थी। उग्रश्रवा जी के अनुसार महाभारत की रचना करके व्यास जी यह विचार करने लगे कि अब शिष्यों को इस ग्रन्थ का अध्ययन कैसे कराऊँ। जन में इसका प्रचार कैसे हो? व्यास जी का यह विचार जानकर ब्रह्मा जी उनके आश्रम पधारे। व्यास जी ने ब्रह्मा जी से अपने महाकाव्य की रचना की बात बतायी। उन्होंने महाभारत के कथ्य का वर्णन किया। उनके अनुसार इस ग्रन्थ में इतिहास और पुराणों का मन्थन करके उनका प्रशस्त रूप प्रकट किया गया है। भूत, वर्तमान और भविष्य काल की इन तीनों संज्ञाओं का भी वर्णन हुआ है— इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं चशयत्। ब्रह्मा जी ने ही व्यास जी को अपना काव्य लिखवाने के लिए गणेश जी को स्मरण करने को कहा। व्यास जी के स्मरण करते ही गणेश जी वहाँ पहुँच गये। व्यास जी ने उनसे अपने ग्रन्थ का—जिसकी रचना उन्होंने मन ही मन कर ली थी—लेखक बन जाने का आग्रह किया। गणेश जी ने उनका अनुरोध तो स्वीकार कर लिया, पर एक शर्त भी लगा दी। वह शर्त यह थी कि उन्हें अपना ग्रन्थ बिना कहीं रुके लिखाना होगा ! यदि वे कहीं रुक गये तो गणेश जी लिखना छोड़ कर चल देंगे! व्यास जी ने भी एक शर्त रख दी कि आपको श्लोकों का अर्थ समझ कर ही लिखना होगा ! इसी शर्त पर महाभारत लिखा गया। उग्रश्रवा जी के अनुसार इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थों का वर्णन किया गया है। यह भारत इतिहास का जाज्वल्यमान दीपक है। यह मोह का अन्धकार मिटा कर लोगों के अन्तःकरण रूप सम्पूर्ण अन्तरंग गृह को भलीभाँति ज्ञानालोक से प्रकाशित कर देता है।

उग्रश्रवा के अनुसार महर्षि व्यास ने मनुष्यलोक में इस महाभारत का प्रवचन किया। उन्होंने सबसे पहले अपने पुत्र शुकदेव को इस महाभारत ग्रन्थ का अध्ययन कराया। तदनन्तर उन्होंने अन्यान्य शिष्यों को इसका उपदेश किया। देवर्षि नारद ने देवताओं को और असित-देवल ने पितरों को इसका श्रवण कराया। जनमेजय के नागयज्ञ के अवसर पर उसके और हजारों ब्राह्मणों के प्रश्न करने पर व्यास जी ने पास ही बैठे अपने शिष्य वैशम्पायन को आज्ञा दी कि तुम इन लोगों को महाभारत सुनाओ।

इस कथा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महाभारत की रचना तो श्रुति परम्परा में ही हुई थी, पर उसके व्यापक प्रचार के लिए स्वयं उसके रचयिता महर्षि व्यास ने ही उसे लिखित रूप देने में गणेश जी की सहायता ली। उसके बाद वह 'वाचन परम्परा' की वस्तु बन गयी जिसमें लिखित कथा श्रोताओं को सुनायी जाती है।

### 1.3.2 'बड्कहा' ('बृहदकथा')

'बड्कहा' ('बृहदकथा') के बारे में भी कहा गया है कि प्रथमतः भगवान शिव ने पार्वती को यह कथा सुनायी थी। फिर गुणादय ने इस कथा को सात लाख श्लोकों में, पैशाची प्राकृत में, लिखित रूप दिया। तत्पश्चात् राजा सातवाहन ने इसके नष्ट होने से बच रहे एक लाख श्लोकों का अनुवाद अपनी भाषा में (सम्भवतः संस्कृत में) कराया, जिसके संस्कृत और प्राकृत में कई अनुवाद हुए। पुराणों के अनुसार राजा सातवाहन, अतएव गुणादय, का समय ई.पू. 495—490 ई. है। अन्ततः ग्यारहवीं सदी ईसवी में 'कथासरित्सागर' के रूप में इसका वह पाठ निर्मित हुआ जो आज उपलब्ध है।

### 1.4 'आख्यान' की प्राचीन अवधारणा और उसके विभिन्न रूप

जैसा पहले ही कहा जा चुका है, 'कथा' और 'आख्यान' अपने मूल अर्थ में एक-दूसरे से अभिन्न हैं। 'आख्यान' शब्द का अर्थ होता है, कथन, निवेदन आदि ; कथा-कहानी तथा प्रतिवचन या उत्तर। विद्वानों के अनुसार आख्यान वैदिक सुपर्ण और मैत्रावरुण आदि से सम्बद्ध कथा का ही नामान्तर है। परम्परा से महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थ भी आख्यान काव्य के रूप में मान्य हैं। बाद में 'काव्य शास्त्र' में भामह ने कुछ भेदक तथ्यों का उल्लेख करते हुए गद्यकाव्य के दो भेद तय किये—'कथा' और 'आख्यायिका'। पहले की कथाएँ कल्पित हैं और दूसरे की ऐतिहासिक। दण्डी ने इसका विरोध करते हुए कहा कि ये भेदक तत्त्व किञ्चित्कर हैं। वस्तुतः ये सब एक ही जाति के हैं और इस जाति का नाम है 'आख्यान'। दण्डी के समय में आख्यान एक जातिवाचक शब्द था। अनेक आख्यानों और उपाख्यानों का संकलन होने के कारण ही रामायण और महाभारत को भी आख्यान की संज्ञा मिली है। 'पंचतन्त्र', 'हितोपदेश', 'कथासरित्सागर' आदि 'उपाख्यानों' के संग्रह माने जाते हैं।

### 1.5 'कथा' की नयी अवधारणा

आचार्यों द्वारा निरूपित 'कथा' के उदाहरण के रूप में सुबन्धु की 'वासवदत्ता', बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और दंडी का 'दशकुमारचरित' आते हैं। बाणभट्ट रचित 'हर्षचरित' को 'आख्यायिका' कहा गया है।

#### 1.5.1 सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता'

'रोमांस' का विकास यूरोप में भले ही बाद की घटना हो, भारत में उसका विकास 'बृहत्कथा' से ही माना जा सकता है। बृहत्कथा की कथाएँ यूरोपीय 'रोमांस' की सारी विशेषताओं से युक्त हैं। 'प्रेम' और 'साहसाभियान' रोमांस की पहचान निश्चित करने वाले प्रमुख तत्त्व हैं। घटनाओं का जाल तो इनमें होता ही है, अतिलौकिक घटनाओं की भी बहुलता होती है। बृहत्कथा में ये सारे गुण हैं। कोई कमी है तो किसी एकल कथा की। यह कमी ई. सन् 500 या उसके कुछ पूर्व विद्यमान सुबन्धु की वासवदत्ता द्वारा पूरी होती है। पर वासवदत्ता की कथा आकार में भले ही 'पर्याप्त लम्बी' या एक पूरी पुस्तक को निर्मित करने वाली हो, खुद में वह बहुत क्षीण है। बृहत्कथा की कोई भी कहानी 'कथा' की दृष्टि से उससे कहीं ज्यादा ठोस है। वस्तुतः सुबन्धु का सारा जोर कथा के पात्रों और उनके परिवेश के, अपने काल के काव्यरसिकों की रुचि के अनुरूप 'काव्यगुणों' से सम्पन्न, सविस्तार वर्णनों पर है। सुबन्धु को केवल इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि

उन्होंने गुणादय की तरह अपनी कथा पद्य में न प्रस्तुत कर गद्य में प्रस्तुत की और कथा को उन समस्त साहित्यिक विशेषताओं से युक्त कर दिया जिसका एकाधिकार केवल कवियों को प्राप्त था। यह एक तरह का ऐसा प्रयोग था, जिसका साहस किसी अन्य गद्यलेखक ने नहीं किया था। कथ्य की दृष्टि से 'वासवदत्ता' भी एक 'रोमांस' ही है, जिसमें प्रेम और साहसाभियान की प्रमुखता है। अपने समय का यथार्थ और विश्वास भी इसमें व्यक्त हुए हैं, पर वह श्लेष और नाना प्रकार के अलंकारों के वाग्जाल से इस प्रकार आच्छादित है कि उसकी तरफ प्रायः पाठक का ध्यान नहीं जाता। सम्भवतः वह कवि का उद्देश्य भी नहीं है। संरचना की दृष्टि से भी वासवदत्ता में कोई ऐसा नयापन नहीं है, जो उल्लेखनीय हो।

### 1.5.2 कादम्बरी

कथा की दृष्टि से 'कादम्बरी' गुणादय की बृहत्कथा की एक कथा—जो कथासरित्सागर में 'मकरन्दिकोपाख्यान' के रूप में उपलब्ध है—पर आधारित है, पर बाणभट्ट ने इस कथासंसार को अपने 'विज्ञान' के अनुरूप बिलकुल नया रूप दे दिया है। इसका कथाविन्यास अद्भुत रूप से नया और आश्चर्यचकित करनेवाला है। यद्यपि 'कथा के भीतर कथा' की विन्यास—कला गुणादय की बृहत्कथा और विष्णु शर्मा के पंचतन्त्र में ही विकसित हो चुकी थी पर बाणभट्ट ने पहली बार परस्पर गुँथी कथाओं को कथा की एकल इकाई में परिणत करने में सफलता प्राप्त की थी। कथा का आरम्भ अवन्ती की राजनगरी विदिशा और उसके राजा शूद्रक के ऐश्वर्य—वर्णन से होता है। एक दिन एक चांडाल राजकन्या अपने वृद्ध सेवक के साथ शूद्रक की राजसभा में एक चमत्कारी सुग्गा लेकर आती है। सेवक शूद्रक से सुग्गे के—जिसका नाम वह वैशम्पायन बताता है—गुणों का बखान करता है और राजा से उसे अपना लेने का अनुरोध करता है। सुग्गा भी एक आर्या छन्द सुनाकर अपने गुणों का परिचय दे देता है। भोजनादि से निवृत्त होने के बाद शूद्रक सुग्गे से उसकी आत्मकथा सुनने का अनुरोध करता है। बस, शुक की 'आत्मकथा' आरम्भ हो जाती है। यहाँ आकर कथाकार बाणभट्ट कथा का सूत्र शुक को थमा देता है और स्वयं नेपथ्य में चला जाता है। इस प्रसंग को विश्वसनीय बनाने की भी बाणभट्ट ने भरपूर कोशिश की है। बाणभट्ट को इस बात की चिन्ता है कि एक पक्षी की कथा विश्वसनीय भी होनी ही चाहिए। बाणभट्ट के समय में आधुनिक 'यथार्थवाद' का जन्म नहीं हुआ था, और दैवी शक्तियों, जीव के नाना योनियों में पुनर्जन्म, शाप—वरदान, देव—गन्धर्व आदि जातियों की उपस्थिति आदि में लोगों का पूरा विश्वास था। कादम्बरी में भी इस प्रकार के प्रसंग भरे पड़े हैं, पर कथाकार कथा की 'विश्वसनीयता' के प्रति सर्वत्र सजग दिखाई देता है। भारतीय कथा के विकास में यह सर्वथा नयी चीज थी। इसके पहले कथाकार इस बात की चिन्ता नहीं करता था कि 'कथा' विश्वसनीय है या नहीं ; वह मानकर चलता था कि उसका श्रोता 'ऐसा कैसे हो सकता है?' जैसा प्रश्न नहीं कर सकता। वह केवल यह पूछ सकता था कि 'इसके बाद क्या हुआ?' पर बाणभट्ट का श्रोता ऐसा नहीं है। अतः कथाकार शुक के द्वारा कही गया कथा के 'विश्वसनीय' होने का तर्क प्रस्तुत करता है। पर, जब शुक की कथा एक ऐसे बिन्दु पर पहुँचती है जब वह उसके आगे की कथा जानने की स्थिति में नहीं होता तो कथाकार बड़ी चतुराई से कथा के अवलोकन—बिन्दु में परिवर्तन कर देता है ; वह एक ऐसे पात्र को कथक के रूप में प्रस्तुत कर देता है जो शुक की कथा का विश्वसनीय जानकार हो सकता था। यह पात्र महामुनि जाबालि हैं, जिन्हें भूत—वर्तमान—भविष्य का ज्ञान है। अब कथा दो स्तरों पर सुनी जाने लगती है। शूद्रक और उनका राजसमाज तो शुक से कथा सुन ही रहा है, पर शुक वह कथा सुना रहा है, जिसे उसने जाबालि आश्रम के जिज्ञासु अन्तःवासियों के साथ

महर्षि जाबालि से सुना था। महर्षि जाबालि शुक (वैशम्पायन) के पूर्व जन्म की कथा सुनाते हैं। यह कथा उज्जयिनी के राजा तारापीड़, उसके मन्त्री शुकनास, राजपुत्र चन्द्रापीड़ और मन्त्रिपुत्र वैशम्पायन की है। अपने दिग्विजय-अभियान में चन्द्रापीड़ हेमकूटस्थित किरात-नगरी सुवर्णपुर में पहुँचता है, जहाँ से वह अकेले अच्छोद सरोवर पहुँच जाता है। वहाँ उसकी मुलाकात महाश्वेता से होती है, जो एक गन्धर्वकन्या है। यहाँ पहुँचकर कथा महाश्वेता की आत्मकथा का रूप ले लेती है, जिसका एकल श्रोता चन्द्रापीड़ है। शूद्रक की राजसभा और जाबालि-आश्रम की ऋषिमंडली अपनी जगह पर कथा सुन रही है। शुक और महामुनि जाबालि भी अपने अपने स्थान पर कथा सुना रहे हैं, पर अब कथा महाश्वेता के मुख में प्रवेश कर गयी है और उसका प्रत्यक्ष श्रोता चन्द्रापीड़ बन गया है। महाश्वेता चन्द्रापीड़ को अपनी प्रेमकहानी सुनाती है, जिसका नायक मुनिकुमार पुंडरीक है। अपनी कथा कहते कहते वह संज्ञाहीन भी हो जाती है और कथा कुछ देर के लिए महाश्वेता के अतीत से निकल कर चन्द्रापीड़ के वर्तमान में आ जाती है। संज्ञा प्राप्त करने पर महाश्वेता पुनः अपनी कथा आगे बढ़ाती है। इसके बाद पुनः कथा का सूत्र थोड़ी देर के लिए महर्षि जाबालि के हाथ में पहुँच जाता है। तत्पश्चात् महाश्वेता की सहचरी तरलिका के प्रति पुंडरीक की जिज्ञासा के व्याज से महाश्वेता अपनी सखी और गन्धर्वराज चित्ररथ की कन्या कादम्बरी की कथा सुनाती है। पर वह केवल उसका परिचय ही देती है। कथा पुनः महामुनि जाबालि के मुख में पहुँच जाती है। महाश्वेता के अनुरोध पर चन्द्रापीड़ उसके साथ कादम्बरी के पिता चित्ररथ के राजप्रासाद में जाता है जहाँ उसकी मुलाकात कादम्बरी से होती है और दोनो एक-दूसरे के प्रेम में गिरपतार हो जाते हैं। यहाँ से लेकर चन्द्रापीड़ के उज्जयिनी जाने और वैशम्पायन की खोज में पुनः अच्छोद सरोवर आने तक की कथा महर्षि जाबालि के द्वारा ही कही जाती है। पर चन्द्रापीड़ के महाश्वेता के निकट पहुँचते ही कथा पुनः महाश्वेता की आत्मकथा का रूप ले लेती है और तब तक इसी रूप में अग्रसर होती रहती है जब तक वैशम्पायन महाश्वेता के शाप से ही सुग्गा नहीं बन जाता। इसके बाद कथा फिर महर्षि जाबालि के मुख में प्रवेश करती है और चन्द्रापीड़ की अप्रत्याशित मृत्यु (स्थगितमृत्यु) तक की कथा महर्षि जाबालि ही सुनाते हैं। यहाँ पहुँच कर यह रहस्योद्घाटन भी हो जाता है कि शुक ही पूर्वजन्म में वैशम्पायन और उससे भी पूर्व जन्म में पुंडरीक था और शूद्रक अपने पूर्वजन्म में चन्द्रापीड़ था जिसका पूर्व शरीर कादम्बरी के सहवास से अच्छोद सरोवर के तट पर सुरक्षित है। महर्षि जाबालि यह भी कहते हैं कि 'जो कहने को प्रवृत्त हुआ था उसे छोड़कर कहानी के प्रवाह में कहाँ से कहाँ चला आया हूँ।' (यानी कथाकार को भी अपने बहकने का थोड़ा थोड़ा आभास है।) इस बिन्दु पर पहुँचकर कथा पुनः शुक के मुख में प्रवेश करती है। महर्षि जाबालि के मुख से अपनी कथा सुनने के बाद आश्रम से उड़ भागने और एक शबर द्वारा पकड़ लिए जाने तथा शूद्रक के राजदरबार तक पहुँचने तक की कथा वह खुद ही सुनाता है। तत्पश्चात् कथा का सूत्र मूल कथाकार—बाणभट्ट का पुत्र पुलिनभट्ट, जिसने अपने पिता बाणभट्ट की अधूरी कादम्बरी को पूरा किया था—के हाथ में आ जाता है। आगे की कथा शुक और शूद्रक की शाप-मुक्ति की कथा है। और कथा का सुखद अन्त होता है।

कहना न होगा कि कथा के भीतर कथा की जटिल योजना द्वारा अपने पूरे विज्ञान को किसी एकल कथासंसार में रूपायित कर देना कथा-प्रतिभा का ऐसा चमत्कार था जो अब तक संसार की किसी भी भाषा में सम्भव नहीं हुआ था। इसके पहले गुणादय ने, और कुछ दूर तक विष्णु शर्मा ने भी, छोटी छोटी कथाओं को एक दूसरे के भीतर नियोजित करके एक बड़ी कथा निर्मित करने का प्रयास किया था, जिसके केन्द्र में कोई एक 'विषय' होता था। पर किसी बड़े और प्रकाशमान 'विज्ञान' की अभिव्यक्ति के लिए एक के भीतर एक



गुम्फित कथाओं द्वारा 'पर्याप्त बड़े आकार' की, पूरी पुस्तक को निर्मित करने वाली, कथा का निर्माण अब तक किसी कथाकार ने नहीं किया था। सबसे आकर्षक बात तो यह है कि बाणभट्ट कथा में घटित प्रसंगों की विश्वसनीयता के प्रति भी सचेत है। उसका श्रोता-समाज किंचित् शंकालु प्रकृति का है, जिसे आश्वस्त करने के लिए कथाकार को सजग रहना पड़ता है। यह बात आधुनिक उपन्यास और 'कहानी' के सन्दर्भ में कितनी सार्थक है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं। आधुनिक 'कहानी' और उपन्यास यथार्थवाद से इतना अधिक आक्रान्त रहा है कि उसमें किसी भी मानवेतर अनुभव से भिन्न प्रसंग के लिए स्थान नहीं होता। हाल के दिनों में इस यथार्थवाद से कथा-लेखकों का थोड़ा थोड़ा मोहभंग शुरू हो गया है और कथा में ऐसे प्रसंगों की योजना भी होने लगी है, जो सपाट यथार्थबोध की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। इस बदलती मानसिकता के परिप्रेक्ष्य में कादम्बरी की कथा-योजना को और भी अच्छी तरह समझा जा सकता है।

### 1.5.3 हर्षचरित

बाणभट्ट ने 'कादम्बरी' के अतिरिक्त जो दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना की थी, उसका नाम 'हर्षचरित' है। 'हर्षचरित' में वर्धन वंश श्रीहर्ष का, जो एक प्रतापी सम्राट था और भारतीय इतिहास में उसे अन्तिम महान शासक के रूप में स्वीकार किया गया है, चरित्र प्रस्तुत किया गया है। बाणभट्ट उसके दरबार का राजकवि था। कहा जाता है कि बाणभट्ट एक प्रसिद्ध विद्वान कुल का युवक होने के बावजूद अपने मार्ग से भटक गया था, और इतना बदनाम हो चुका था कि जब वह राजाश्रय प्राप्त करने के उद्देश्य से श्रीहर्ष के राजदरबार में पहुँचा तो श्रीहर्ष ने उसे कोई सम्मान नहीं दिया। पर अन्ततः वह श्रीहर्ष के एक निकट अधिकारी कुमार कृष्ण की सिफारिश पर दरबार में जगह प्राप्त करने में सफल हो गया और वह श्रीहर्ष के दरबार का राजकवि बनाया गया। राजकवि बनने के बाद बाणभट्ट ने महाराज श्रीहर्ष के चरित्र को आधार बनाकर 'हर्षचरित' की रचना की। कहा जाता है कि इसमें श्रीहर्ष का चरित्र अपने ऐतिहासिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इतिहासकारों ने इसे मानते हुए इसकी घटनाओं को इतिहास में भी ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है। पर 'हर्षचरित' निखालिस इतिहास नहीं है। इसमें बाणभट्ट का कविरूप—यद्यपि यह गद्य में रचित है—अपने पूरे वैभव के साथ उपस्थित है। प्रकृति और अन्य प्रकार के वर्णनों में बाणभट्ट की कविकल्पना का मनोहर रूप देखने को मिलता है। इसकी भाषा 'गद्य' होने के बावजूद काव्यगुणों से भरपूर है। इसीलिए आचार्यों ने इसे 'आख्यायिका' कहा है।

### 1.5.4 दशकुमारचरित

बाणभट्ट के बाद संस्कृत कथाकार दण्डी ने दशकुमारचरित नामक 'पुस्तकाकार कथा' की रचना की। दशकुमारचरित में तीन भाग हैं : 'पूर्वपीठिका', 'चरित' और 'उत्तर-पीठिका'। 'पूर्व पीठिका' में पाँच और 'चरित' में आठ उच्छ्वास हैं। 'उत्तरपीठिका' अष्टम उच्छ्वास का उपसंहार है। यद्यपि इसकी कथा भी समकालीन रुचि को लुभानेवाले काव्यात्मक वस्तु और चरित्र वर्णनों से आक्रान्त है, पर इन कथाओं का विषय सातवीं शताब्दी और उसके पूर्व के समय को प्रामाणित्वा के साथ प्रस्तुत करता है। समकालीन सामन्ती राजनीति और समाज के चित्रण, व्यावहारिक ज्ञान, चौरशास्त्र, प्रेम, रमणीहरण और साहसाभियान से भरी यह कथा यूरोपीय 'रोमांस' के सारे गुणों से सम्पन्न है। इस 'कथा' में दस राजकुमारों की अनुभव-कथाएँ अलग अलग वर्णित हैं, जिन्हें आपस में जोड़ने वाला कथापात्र मगध राजकुमार राजवाहन है। पर ये कथाएँ मिलकर किसी एक सुसम्बद्ध कथानक का निर्माण नहीं करतीं। कहा जा सकता है कि परस्परभिन्न कथाओं को जोड़ने की दिशा में यह भी एक उल्लेखनीय प्रयास था, यद्यपि कादम्बरी की तुलना में यह कहीं

नहीं ठहरता। आधुनिक यथार्थवाद की कसौटी पर इसका कथानक भी खरा नहीं उतरता; कदाचित् इसकी कोई परवाह भी कथाकार को नहीं है। कथा में अनेक ऐसी घटनाएँ आती हैं जो मानव अनुभव के वृत्त में नहीं आतीं, यद्यपि सम्भव है, अपने समय के विश्वासों की कसौटी पर ऐसी घटनाएँ विश्वसनीय भी मानी जाती रही हों। पर जहाँ तक कथा-विन्यास का प्रश्न है, दशकुमारचरित का महत्त्व इस दृष्टि से स्वीकार किया जा सकता है कि इसमें संघटनात्मक जकड़बन्दी नहीं है, जो आज की कहानी और उपन्यास की संरचना की अनिवार्य पहचान हो गयी है। इसे कथा-संरचना के विकास के रूप में भी देखा जा सकता है। हिन्दी में अनेक कहानियाँ और उपन्यास इस प्रविधि में लिखे गये हैं। रुद्र काशिकेय का उपन्यास 'बहती गंगा' इसका एक उदाहरण है। कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरबंसिया' और 'अकहानी' श्रेणी की अनेक कहानियाँ भी इसका उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

### 1.5.5 कथा-रचना की भारतीय परम्परा का अवसान

यह साहित्यिक इतिहास का अजूबापन या त्रासदी है कि बाणभट्ट और दण्डी के बाद कथा-रचना की भारतीय परम्परा आगे नहीं बढ़ी। दसवीं सदी में धनपाल ने तिलकमंजरी के रूप में कादम्बरी की परम्परा को जीवित करने का प्रयत्न तो किया पर संरचना की दृष्टि से उसे कादम्बरी का विकास नहीं कहा जा सकता। इसका सबसे बड़ा कारण कदाचित् यह था कि इस समय तक आते आते संस्कृत केवल राजदरबारों और पंडितों की भाषा रह गयी थी। और चूँकि दसवीं शताब्दी के बाद धीरे धीरे संस्कृत को राजाश्रय प्रदान करनेवाले हिन्दू राज्य समाप्त हो गये, इस कारण संस्कृत काव्य की परम्परा बहुत कमजोर हो गयी। संस्कृत के बाद फारसी केन्द्रीय सत्ता में आ गयी और काव्यरचना का माध्यम भी बनी। पर देश की आम जनता का लगाव न तो संस्कृत से था न फारसी से। इन्हीं परिस्थितियों में उत्तरी भारत की जन-बोलियाँ साहित्य की भाषा बनीं। उन्हें सूफियों और सन्तों-भक्तों का आश्रय मिला और काव्य-रचना का अभूतपूर्व विकास हुआ। इस विकास के मूल में उत्तर भारत की जनता का 'लोकाश्रय' था। बाद में उसे राजदरबारों का भी प्रश्रय मिला। पर गद्य के विकास के लिए जिस राजाश्रय की अपेक्षा होती है, उससे ये जन-भाषाएँ लगभग साढ़े सात सौ वर्षों तक वंचित रहीं। अठारहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा और खड़ी बोली में संस्कृत 'योगवाशिष्ठ', 'वेतालपंचविंशति' और 'सिंहासनद्वात्रिंशतिका' आदि संस्कृत गद्यकथा पुस्तकों के रूपान्तर हुए और उनका लोक में प्रचार भी बहुत हुआ, पर कोई मौलिक गद्यकथा पुस्तक ब्रजभाषा या हिन्दी की किसी दूसरी घटक भाषा में नहीं लिखी गयी। 'दस अवतार भाषा' (1744), 'पद्मपुराण का भाषानुवाद' (1761), किस्सा चहार दरवेश का अनुवाद 'नौतर्जे मुरस्सा' (1798) आदि भी इस काल में लोकप्रिय हुई थीं। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व खड़ीबोली हिन्दी में केवल दो मौलिक गद्यकथा पुस्तकें, मुल्ला वजही कृत 'सबरस' (1636) और सैयद इंशा अल्ला ख़ाँ कृत 'रानी' केतकी की कहानी (ल. 1800) उपलब्ध होती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ऐतिहासिक कारणों से खड़ी बोली के आधार पर विकसित 'हिन्दी' गद्य का विकास हुआ और उसके साथ ही 'गद्यकथा' भी नये अन्दाज में प्रकट हुई। इसी ने 'उपन्यास' का भी रूप ग्रहण किया। पर आश्चर्य की बात यह है कि गुणादय, विष्णु शर्मा, सुबन्धु, बाणभट्ट, दण्डी आदि की भारतीय कथा-परम्परा से इसका सम्बन्ध नहीं जुड़ा। इसे एक साहित्यिक त्रासदी ही समझना चाहिए।

## 1.6 सारांश

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'कथा और 'आख्यान' पर्यायवाची शब्द हैं। प्राचीन साहित्य में इनका प्रयोग भी समान अर्थों में ही होता रहा है। 'आख्यान' शब्द का अर्थ होता है, कथन, निवेदन आदि ; कथा—कहानी तथा प्रतिवचन या उत्तर। विद्वानों के अनुसार आख्यान वैदिक सुपर्ण और मैत्रावरुण आदि से सम्बद्ध कथा का ही नामान्तर है। परम्परा से 'महाभारत' आदि इतिहास ग्रन्थ भी आख्यान काव्य के रूप में मान्य हैं।

'कथा' में तीन तत्त्वों की प्रधानता होती है : घटना—समूह, समयानुक्रम और दिक् या स्पेस तथा कौतूहल। 'घटना' में आकस्मिकता, संयोग और अप्रत्याशित होने के तत्त्व होते हैं। जीवन में प्रमुखता 'कार्यव्यापारों' की—अर्थात् जो कार्य हम रोजमर्रा की जिन्दगी में करते हैं—होती है, 'घटनाओं' की नहीं। पर 'कथा' में 'घटनाओं' की ही प्रमुखता होती है, जीवन के सामान्य कार्य—व्यापार गौण होते हैं। घटनाएँ समय के अनुक्रम में गुँथी होती हैं। समय का एक ऐतिहासिक क्रम होता है जो घड़ी की टिकटिक या कैलेन्डर के पृष्ठों द्वारा निर्धारित होता है।

'काल' की तरह 'दिक्' या 'स्पेस' भी कथा के लिए जरूरी होता है। घटनाएँ 'दिक्' में ही घटित हो सकती हैं। पर 'कथा' का 'दिक्' मानव अनुभव की सीमाओं को स्वीकार नहीं करता। बच्चों की कथाओं में हमारी पृथ्वी के जाने पहचाने स्थान ही नहीं, अनजानी जगहें भी, यहाँ तक कि ब्रह्मांड के कल्पित लोक भी, घटना—स्थल के रूप में आते हैं।

'कथा' के लिए यह भी जरूरी है कि 'घटनाएँ' कौतूहल पैदा करने वाली हों। उनमें आकस्मिक और अप्रत्याशित होने के साथ साथ नवीनता भी अपेक्षित होती है। कौतूहल बनाए रखने के लिए यह जरूरी है।

मौखिक रूप में 'कथा' कितनी प्राचीन है, इसका कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है। यह अत्यन्त प्राचीन है, इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि आज भी यह मनुष्य की सहज और जन्मजात प्रवृत्ति से जुड़ी हुई है।

अनुमानतः कथा पहले मनोरंजन का ही काम करती होगी। पर धीरे धीरे उसका उपयोग उपदेश या 'मूल्यों' की अभिव्यक्ति के लिए किया जाने लगा होगा।

कथा की लिखित परम्परा का आरम्भ कब हुआ, इसका कोई निश्चित और प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं है। वेद, उपनिषद् और पुराण स्मृति—परम्परा में आते हैं, अतः उनमें आयी कथाएँ भी कहने—सुनने की परम्परा में ही आएँगी। 'महाभारत' के 'लिखित' होने का प्रमाण मिलता है। इसके एक लाख श्लोकों वाले उपाख्यान भाग को 'आद्य भारत' कहा गया है। तदनन्तर व्यास जी ने चौबीस हजार श्लोकों की 'भारत संहिता' बनायी, जिसे 'भारत' कहा जाता है। इस मनुष्यलोक में एक लाख श्लोकों का आद्य भारत प्रतिष्ठित है। इसे ही उग्रश्रवा जी ने नैमिषारण्य में मुनिवरों को सुनाया था। वस्तुतः महाभारत की रचना भी श्रुति परम्परा में ही हुई थी, पर उसके व्यापक प्रचार के लिए स्वयं उसके रचयिता महर्षि व्यास ने ही उसे लिखित रूप देने में गणेश जी की सहायता ली। उसके बाद वह 'वाचन परम्परा' की वस्तु बन गयी जिसमें लिखित कथा श्रोताओं को सुनायी जाती है। 'बड्ढकथा' ('बृहद्कथा') के बारे में भी कहा गया है कि प्रथमतः भगवान शिव ने पार्वती को यह कथा सुनायी थी। फिर गुणादय ने इस कथा को सात लाख श्लोकों में, पैशाची प्राकृत में, लिखित रूप दिया। राजा सातवाहन ने इसके नष्ट होने से

बच रहे एक लाख श्लोकों का अनुवाद संस्कृत में कराया, जिसके बाद में भी अनेक रूपान्तर हुए। पुराणों के अनुसार राजा सातवाहन, अतएव गुणादय, का समय ई.पू. 495-490 है, अन्ततः ग्यारहवीं सदी ईसवी में इसका वह पाठ निर्मित हुआ जो आज उपलब्ध है।

बाद में काव्य शास्त्र में भामह ने गद्यकाव्य के दो भेद, 'कथा' और 'आख्यायिका' निश्चित किये। पहले की कथाएँ कल्पित हैं और दूसरे की ऐतिहासिक। दण्डी के अनुसार वस्तुतः ये सब एक ही जाति के हैं और इस जाति का नाम है आख्यान।

आचार्यों द्वारा निरूपित 'कथा' के उदाहरण के रूप में सुबन्धु की 'वासवदत्ता', बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और दंडी का 'दशकुमारचरित' आते हैं।

कथा के भीतर कथा की योजना द्वारा पूरे विज्ञान को किसी एकल कथासंसार में रूपायित कर देना कथा-प्रतिभा का ऐसा चमत्कार था जो अब तक संसार की किसी भी भाषा में सम्भव नहीं हुआ था। इसके पहले गुणादय ने, और कुछ दूर तक विष्णु शर्मा ने भी, छोटी छोटी कथाओं को एक दूसरे के भीतर नियोजित करके एक बड़ी कथा निर्मित करने का प्रयास किया था, जिसके केन्द्र में कोई एक 'विषय' होता था। पर किसी बड़े और प्रकाशमान 'विज्ञान' की अभिव्यक्ति के लिए एक के भीतर एक गुम्फित कथाओं द्वारा 'पर्याप्त बड़े आकार' की, पूरी पुस्तक को निर्मित करने वाली, कथा का निर्माण बाणभट्ट ने 'कादम्बरी' में किया। बाणभट्ट की दूसरी रचना 'हर्षचरित' है, जिसमें श्रीहर्ष का चरित्र प्रस्तुत किया गया है।

बाणभट्ट के बाद दण्डी ने दशकुमारचरित नामक 'पुस्तकाकार कथा' की रचना की, जिसमें दस राजकुमारों की अनुभव-कथाएँ अलग अलग वर्णित हैं, जिन्हें आपस में जोड़ने वाला कथापात्र मगध राजकुमार राजवाहन है। पर ये कथाएँ मिलकर किसी एक सुसम्बद्ध कथानक का निर्माण नहीं करतीं। कहा जा सकता है कि परस्परभिन्न कथाओं को जोड़ने की दिशा में यह भी एक उल्लेखनीय प्रयास था, यद्यपि कादम्बरी की तुलना में यह कहीं नहीं ठहरता।

दसवीं सदी में धनपाल ने तिलकमंजरी के रूप में कादम्बरी की परम्परा को जीवित करने का प्रयत्न तो किया पर संरचना की दृष्टि से उसे भी कादम्बरी का विकास नहीं कहा जा सकता।

दसवीं शताब्दी के बाद धीरे धीरे संस्कृत को राजाश्रय प्रदान करने वाले हिन्दू राज्य समाप्त हो गये, इस कारण संस्कृत काव्य की परम्परा बहुत कमजोर हो गयी। संस्कृत के बाद फारसी केन्द्रीय सत्ता में आ गयी और काव्यरचना का माध्यम भी बनी। पर देश की आम जनता का लगाव न तो संस्कृत से था न फारसी से। इन्हीं परिस्थितियों में उत्तरी भारत की जन-बोलियाँ साहित्य की भाषा बनीं। पर गद्य के विकास के लिए जिस राजाश्रय की अपेक्षा होती है, उससे ये जन-भाषाएँ लगभग साढ़े सात सौ वर्षों तक वंचित रहीं, अतः गद्यकथा का समुचित विकास मध्यकाल में नहीं हो पाया।

### अभ्यास

1. 'कथा' और 'आख्यान' अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके मूल स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

2. 'कथा' की प्राचीनता का उल्लेख करते हुए उसके मूल उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
3. 'कथा' की लिखित परम्परा का विवेचन कीजिए।
4. 'आख्यान' की प्राचीन अवधारणा का उल्लेख करते हुए उसके विभिन्न रूपों पर प्रकाश डालिए।
5. सातवीं सदी में 'कथा' की नयी अवधारणा का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
6. कथा-रचना की भारतीय परम्परा के अवसान और उसके कारणों का उल्लेख कीजिए।

